Gaatha, Vol.-2; Issue-1 (Jan.-June) 2025 : PP-17-24

गाथा (GAATHA)

स्त्री अस्मिता और विमर्श की सहकर्मी-समीक्षित, अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका

ISSN : 3049-3463(Online)

Vol.-2; Issue-1 (Jan.-June) 2025

Page No.- 17-24

©2025 Gaatha

https://gaatha.net.in

Author :

प्रीतम कुमार सिंह

शोधार्थी- (हिंदी विभाग),

वीरकुंवर सिंह विश्वविद्यालय.

Corresponding Author :

प्रीतम कुमार सिंह

शोधार्थी- (हिंदी विभाग),

वीरकुंवर सिंह विश्वविद्यालय.

राष्ट्रकवि दिनकर : एक इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व एवं कृतित्व

हिंदी काव्य गगन में दिनकर का प्रार्दुभाव इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व सम्पन्न एक अद्भुत शख्सियत के रूप में हुआ था। नाना वर्णी चिंतनों और भावों से परिपूर्ण अपनी कवि- ताओं के माध्यम से इन्होंने हिंदी साहित्य के अक्षय भण्डार को जिस प्रकार समृद्ध औ मंडित किया है, आधुनिक काव्य क्षितिज पर उसका जोड़ मिलना असम्भव नहीं, पर दुष्कर अवश्य है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि दिनकर पुरुषार्थ, शौर्य, ओज, भुजबल और दुर्धर्ष पराक्रम के प्रबल पक्षधर कवि हैं, किंतु, विविध भावों एवं चिंतनों से ओत- प्रोत इनकी रचनाएं, इस तथ्य का साक्ष्य हैं कि दिनकर का व्यक्तित्व इंद्रधनुषी है। उन्हें किसी एक सीमा की संकीर्ण परिधि में बांधा नहीं जा सकता है, जिस प्रकार इंद्रधनुष के रूप में सात रंगों में विभा- जित होने वाला प्रकाश समाहित रूप से उज्ज्वल होता है, उसी प्रकार अनेक भावों, चिंतनों और विचारों का एकाकार रूप दिनकर हैं। इनका काव्य-साहित्य गुण और परिमाण दोनों दृष्टियों से विपुल है। इस आलेख में हम रामधारी सिंह दिनकर के इंद्रधनुषी व्यक्तित्व पर चर्चा करेंगे। यथा- युग-धर्म के हुंकार के रूप में, गांधी से मार्क्स की परिष्कृति, राष्ट्रकवि का असमय आह्वान, प्रेम और सौंदर्य के रचयिता, तिमिर-रश्मि के कीर्तिगायक राष्ट्रकवि, शोषितों के असह्य कसक पर अधैर्य का कवि, शिशुओं की चिंता करते हुए जनकवि, युगों के मूक-मौनों की वाणी के रूप में आदि सभी रूप उनके व्यक्तित्व का हिस्सा हैं यह तथ्य निम्नांकित अनेक रूपों में सहज द्रष्टव्य है।

युग-धर्म के हुंकार के रूप में दिनकर:-

राष्ट्र और समाज से संबंधित दिनकर जी का विपुल काव्य भारतीय स्वतंत्रता संग्राम, उनकी आशा-निराशा भरी अनेक मंजिलों, साम्प्रदायिकता के उभार, स्वतंत्रता प्राप्ति, महात्मा गांधी की कुर्बानी,

भूदान आन्दोलन, सत्ताधारी दल के भोगवाद, राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की गति मंथरता, जनता की दुर्दशा, पूंजीवाद के बढ़ाव, भारत सोवियत मैत्री, चीनी आक्रमण, बंगलादेश की मुक्ति और अमरीकीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत आदि का ज्वलंत अभिलेख है, जो कभी धूमिल होने वाला नहीं है।"[1]

"हमारे क्रांति युग का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व कविता में इस समय 'दिनकर' कर रहा है। क्रांतिवादी को जिन जिन हृदय मंथनों से गुजरना पड़ता है, दिनकर की कविता उसकी सच्ची तस्वीर रखती है। क्रांतिकारियों के भी दिल होता है, दिल में प्रेम नामक बिना व्याख्या की एक अनुभूति होती है, वह भी किसी को चाहता है, किसी पर अपने आप को न्योछावर करना चाहता है; बसंत उसके हृदय में भी गुदगुदी लाता है, बरसात उसके हृदयाकाश में भी रिमझिम कर उठती है, सौंदर्य चुंबक की तरह उसकी आंखों को पकड़ लेता है। लेकिन वह करे तो क्या ? उसी समय उसके कानों में दूसरी रागिनी बज उठती है, उसकी आंखें कुछ दूसरी ही दृश्य देखने लगती हैं।"[2]

एक ओर जहां दिनकर आत्मविश्वास से भरपूर होकर शक्ति और सामर्थ्य के पुंज-समुद्र को चुनौती देते हुए कहते हैं-

"सुनुं क्या सिंधु ! मैं गर्जन तुम्हारा ?
स्वयं युग-धर्म की हुंकार हूं मैं;
कठिन निर्घोष हूं भीषण अशनि का,
प्रलय गांडीव की टंकार हूं मैं।"[3]

"मही नहीं जीवित है मिट्टी से डरने वालों से,
जीवित है वह उसे फूंक सोना करने वालों से।
ज्वलित देख पंचाग्नि जगत् से निकल भागता योगी।
धुनी बना कर उसे तापता अनासक्त रसभोगी।"[4]

वही दिनकर अपनी बेबसी तथा असहायपन की अभिव्यक्ति भी करते हुए कहते हैं-

"मैं भी हंसूं फूल-सा खिल कर ?
शिशु अबोध हो लूं कैसे ?
पीकर इतनी व्यथा, कहो,
तुतली वाणी बोलूं कैसे ?
जी करता है, मत्त वायु बन,
फिरुं; कुंज में नित्य करुं,
पर, हूं विवश, हाय, पंकज का,
हिमकण हूं, डोलूं कैसे ?"[5]

गांधी से मार्क्स की परिष्कृतिः-

अहिंसा को सिद्धांत के रुप में अटल मान कर उस पर कठोरता से आचरण करने वाले एक मात्र व्यक्ति गांधीजी थे। गांधीजी को दिनकर कर्मठता के अवतार मानते थे। गांधीजी जी के विषय में उनकी धारणा थी कि जिस भारत की उन्होंने कल्पना की थी, वह सैन्यबल नहीं, पुण्यबल को लेकर बढ़ने वाला देश है। 'बापू' कविता में दिनकर जी ने गांधी जी की तुलना इतिहास के अन्य शूरमाओं से की है और कहा है कि गांधी जी की वीरता सभी वीरों की वीरता से भिन्न है-

"पर, तू इन सबके भिन्न ज्योति,
जेता जेता से महीयान,
कूटस्थ पुरुष! तेरा आसन,
सबसे ऊंचा, सबसे महान।"[6]

समाज में गरीबी और विषमता की समस्या आदिकाल से ही मौजूद रही है और जितने भी अवतार, नबी, पैगम्बर और सुधारक पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए, उन सब ने इसके जहर का अनुभव किया और सभी ने घूम-घूमकर गरीबी की सत्ता को स्वीकार कर लिया तथा लोगों से कहा कि जो अभाव से पीड़ित हैं उनके लिए दान दो, उनके लिए अपने सुखों का त्याग करो।

"लेकिन, जब मार्क्स आए, उन्होंने सारी स्थिति का विधिवत रुप से अध्ययन करके कहा कि गरीबी कोई दैवी- सत्ता-कृत अटल वस्तु नहीं है और न दान इसका उपचार है। दरअसल, समाज में गरीबी इसलिए फैली हुई है कि समाज की पद्धति शोषण को स्वीकार करती है और शोषण से चोर पैदा होते हैं। ये चोर धन जमा करने वाले चोर हैं और ये चोर जब तक मौजूद रहेंगे, तब तक समाज में गरीबी भी कायम रहेगी। अतएव समाज से गरीबी दूर करने का तरीका दान नहीं, बल्कि क्रांति और उच्छेद है।"[7]

अच्छे लगते हैं मार्क्स, किंतु है प्रेम गांधी से।
शीतल है प्रिय पवन, प्रेरणा लेता हूं गांधी से।

राष्ट्रकवि का असमय आह्वान-

"राष्ट्रकवि उसे कहना चाहिए, जो अपने देश की प्रत्येक संस्कृति को अपने में समी लेता है, जो देश के प्रत्येक वर्ग का अपने को प्रतिनिधि समझता है और सभी संप्रदायों के बीच जो देशगत ऐक्य है, उसे मुखर बनाता है इसी प्रकार विश्वकवि उसे कहना चाहिए दुनिया के हर देश के भीतर जो अंतरराष्ट्रीय तत्त्व है, उसे वाणी दे। विश्व कवि बनने की पहली शर्त यह है कि वह कवि राष्ट्रीय हो। जो राष्ट्र के विभिन्न अवयवों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता, वह विश्व के विभिन्न देशों का प्रतिनिधित्व कैसे कर करेगा ? और भारत में जो भी राष्ट्रकवि होगा, उसे विश्वकवि ही समझना चाहिए, क्योंकि भारत, छोटे पैमाने पर सारा संसार ही है। जैसे प्रत्येक राष्ट्र अपनी अभिव्यक्ति के लिए लालायित रहता है, उसी प्रकार देश का भी प्रत्येक सम्प्रदाय अपनी अभिव्यक्ति खोजता है। राष्ट्रपुरुष और राष्ट्रकवि समान रूप से कठिन कार्य है। दोनों के लिए असीम धैर्य और अपरिमित उदारता की आवश्यकता है।"[8]

"भारत एक भाव, जिसको पाकर मनुष्य जगता है,
भारत एक जलज, जिस पर जल का न दाग़ लगता है।
भारत है संज्ञा विराग की, उज्ज्वल आत्म-उदय की,
भारत है आभा मनुष्य की सबसे बड़ी विजय की।
भारत है भावना दाह जग-जीवन का हरने की,
भारत है कल्पना मनुज को राग-मुक्त करने की।
जहां कहीं एकता अखंडित, जहां प्रेम का स्वर है,
देश -देश में खड़ा वहां भारत जीवित भास्वर है,
जहां त्याग माधुर्यपूर्ण हो, जहां भोग निष्काम;
समरस हो कामना, वही भारत को करो प्रणाम!"[9]

प्रेम और सौंदर्य के रचयिता दिनकर:-

पुरुरवा और उर्वशी अलग-अलग तरह की प्यास लेकर एक-दूसरे के क़रीब आए हैं। पुरुरवा धरती पुत्र है और उर्वशी देवलोक से उतरी हुई नारी है। पुरुरवा के भीतर देवत्व की तृषा है और उर्वशी सहज और निश्चिंत भाव से पृथ्वी का सुख भोगना चाहती है। उर्वशी का दर्शन पक्ष है- प्रेम और ईश्वर, जैव और आत्म-धरातल को परस्पर मिलाना।..... उर्वशी की चर्चा को दार्शनिक ऊहापोह से निकाल कर काव्य के धरातल पर प्रतिष्ठित किया जाए तो निश्चित ही कुछ महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां लक्षित होंगी।..... 'उर्वशी' प्रेम और सौंदर्य का काव्य है। प्रेम और सौंदर्य की मूल धारा में जीवन-दर्शन संबंधी अन्य धाराएं आ कर मिल जाती हैं। प्रेम और सौंदर्य का सुंदर विधान कवि ने बहुत व्यापक धरातल पर किया है। समस्त परिवेश इससे अनुप्राणित हो उठा है। कवि ने प्रेम की छवियों को मनोवैज्ञानिक धरातल पर पहचाना है। प्रेम भी निर्विकल्प की अवस्था नहीं है, उसमें भी अनेक स्फुलिंग उड़ा करते हैं और मन को शांत करने के बदले बेचैनी से भर देते हैं.....उर्वशी' में प्रेम के ही मान्य स्वरुप के भीतर प्रविष्ट होकर उसकी आंतरिकता और सूक्ष्म संवेदनाओं को उभारा गया है और कहीं कहीं उसे एक आध्या- त्मिक भंगिमा भी देने का प्रयत्न किया गया है। इन अनुभूतियों व संवेदनाओं की व्यंजना करने के लिए जिन बिम्बों का सहारा लिया गया है, वे कहीं तो बड़े पारम्परिक हैं जिन्हें सयास नयी खराद पर चढ़ाया गया है और कहीं नये और ताज़े हैं।"[10]

"क्या है यह अमरत्व ? समीरों-सा सौरभ पीना है,
मन में धूम समेट शांति से युग-युग तक जीना है।
पर, सोचों तो, मर्त्य मनुज कितना मधु-रस पीता है,
दो, दिन ही सही कैसे वह धधक धधक कर जीता है।
इन ज्वलंत वेगों के आगे मलिन शांति सारी है,
क्षण भर के उन्मद तरंग पर चिरता बलिहारी है।"[11]

पुरुरवा के भीतर देवत्व की तृषा है। इसलिए मर्त्य लोक के समस्त सुखों में वह व्याकुल और विषण्ण है।... पुरुरवा की वेदना समग्र मानव जाति की चिरंतन वेदना से ध्वनित है। किंतु, मानवता की यह वेदना उत्पन्न कहां से होती है? मानव मन का यह दु:साध्य संघर्ष आता है कहां से ?

"चाहिए देवत्व,
पर, इस आग को धर दूं कहां पर ?
कामनाओं को विसर्जित व्योम में कर दूं कहां पर ?
वह्नि का यह बेचैन रसकोष, बोलो, कौन लेगा ?
आग के बदले मुझे संतोष, बोलो, कौन देगा ?"[12]

मानव की प्रणय कथा अत्यंत अद्भुत है। मानवता के इतिहास में इसके प्रेम-प्रसंगों का विशाल समुद्र मिलता है। जिसमें अनेक प्रेमी आए, देखें और स्नान किए। कुछ इसमें डूब जाने के भय से उतरे ही नहीं और कुछ 'दु:ख-दर्द का दरिया' सोच कर किनारे तक भी नहीं आए। कुछ तट तक गए किंतु, भय से रुक गए और कुछ पार कर गए। कुछ ने इस विशाल समुंदर में अनमोल मोती चुन लिया और बहुत से डूब भी गए। देव अप्सराओं को भी इसकी प्रीति को देख कर आश्चर्य होता है। मानवी-प्रेम और देवत्व-प्रेम के रूप को रूपायीत करते हुए कहती हैं-

"सहजन्ये ! पर, हम परियों का इतना भी रोना क्या ?
किसी एक नर के निमित्त इतना धीरज खोना क्या ?
हम भी हैं मानवी कि ज्यों ही प्रेम उगे, रुक जाएं,

मिलें जहां भी दान हृदय का वही मग्न झूक जाएं ?
प्रेम मानवी की निधि है, अपनी तो वह क्रीड़ा है;
प्रेम हमारा स्वाद, मानवी की आकुल पीड़ा है।"[13]

नारी नर को छूकर तृप्त नहीं होती, न नर नारी के आलिंगन में संतोष मानता है। कोई शक्ति है जो नारी को नर तथा नर को नारी से अलग रहने नहीं देती, और जब वे मिल जाते हैं, तब भी, उनके भीतर किसी ऐसी तृष्णा का संचार करती है, जिसकी तृप्ति शरीर के धरातल पर अनुपलब्ध..... नारी के भीतर एक और नारी है, जो अगोचर और इंद्रियातीत है। इस नारी का संधान पुरुष तब पाता है, जब शरीर की धारा, उछालते उछालते मन के समुद्र में फेंक देती है, तब दैहिक चेतना से परे, उसे वह प्रेम की दुर्गम समाधि में पहुंच कर निस्पंद हो जाता है।.. और पुरुष के भीतर भी एक पुरुष है, जो शरीर के धरातल पर नहीं रहता है, जिससे मिलने की आकुलता में नारी अंग-संज्ञा के पार पहुंचना चाहती है।"[14]

"यही चाहती हूं कि गंध को तन हो, उसे धरूं मैं,
उड़ते हुए अदेह स्वप्न को बाहों में जकड़ूं मैं,
निराकार मन की उमंग को रूप कहीं दे पाऊं,
फूटे तन की आग और मैं उसमें तैर नहाऊं।"[15]

प्रेम में भी भूत से ऊपर उठकर भूतरोत्तर होने की शक्ति होती है, रूप के भीतर डूबकर अरूप का संधान करने की प्रेरणा होती है। अपने स्थूल से स्थूल रूप में भी, प्रेम एक मानव का दूसरे मानव के साथ एकाकार होने का सबसे सहज, सबसे स्वाभाविक मार्ग है; किंतु विकसित और उदात्त हो जाने पर तो वह मनुष्य को बहुत कुछ वही शीतलता प्रदान करता है, जो धर्म का अवदान है। प्रगाढ़ प्रीति के रंग में रंगी हुई प्रेयसी निज प्रीतम से कहती है।"[16]

"आ मेरे प्यारे तृषित! श्रांत! अन्त:सर में मज्जित करके,
हर लूंगी मन की तपन, चांदनी फूलों से सज्जित करके।
रसमयी मेघमाला बनकर मैं तुझे घेर छा जाऊंगी,
फूलों के छांव तले अपने अधरों की सुधा पिलाऊंगी।"[17]
"तुम पंथ जोहते रहो,
अचानक किसी रात मैं आऊंगी।
अधरों में अपने अधरों की मदिरा उड़ेल,
मैं तुम्हें अपने वक्ष से लगा
युगों की संचित तपन मिटाऊंगी।"[18]

तिमिर-रश्मि के कीर्तिगायक राष्ट्रकवि:-

मनुष्य की संस्कृति क्या है ? वह आत्म- संशोधन की, आत्मोद्धार की, अपने आपको मुक्त करने की प्रक्रिया है। मुक्ति चाहिए अज्ञान से, असमर्थता से, अयोग्यता से, अंधविश्वास से और अंधकार से। धर्म मनुष्य के विकास का आदि सोपान था। लगता है, विज्ञान उसके विकास का अंतिम सोपान है। अतः धर्म और विज्ञान दोनों ही मनुष्य के लिए आवश्यक हैं। विज्ञान मनुष्य की बुद्धि से उत्पन्न हुआ है। धर्म भी मनुष्य की बुद्धि से ही जन्मा था। बुद्धि के बिना धर्म सूझता कैसे ? जानवरों में धर्म क्यों नहीं है ? अतएव आधुनिक विचारों को ग्रहण करके भी मनुष्य धार्मिक रहे, यह सम्भव है। यदि कोई कहे कि जो कुछ भी जानने योग्य है, उसे केवल योग से जानो, तो यह तामसिक उपदेश होगा- तामसिक जिसमें तिमिर का प्राधान्य है"[19]

"प्रहलादों को जला सके जो, जग में ऐसा ताप नहीं;

अम्बरीष के लिए यहां दुर्वासा का अभिशाप नहीं।
कलियों पर जो पले, कुलिश की उनके लिए कहानी है;
नीलकंठ को नदी, सिंधु, दोनों का मीठा पानी है।"[20]

शोषितों के असह्य कसक पर अधैर्य का कवि:-

"मानव के जीवन पर जो संकटों का अंधेरा छाया रहता है। दुःख उसे अपने गोद में बैठाए रहती है और सुख के सपनों को वह कभी नहीं आने देती। उस चीज़ को कवि पहचान कर और पीड़ा के पंक में फंसे हुए उस मानव को वह अपनी रश्मि की हाथ देकर निकालना चाहता है। दिनकर जी मानवता और मनुष्यता को सर्वश्रेष्ठ मानते थे। दिनकर के काव्य में वक्तृत्व का तत्त्व प्रबल है, जिसका आरंभ उनकी राष्ट्रीय कवि- ताओं जैसे 'दिल्ली', 'हाहाकार', 'विपथगा', 'समर शेष है' में मिलता है-

भूख लगी है, रोटी दो।
मन में नहीं प्रदीप हमारे, तन में दाहक आग,
हम न जानते हिंसा-प्रतिहिंसा का यह खटराग,
जिनका उदर पूर्ण हो वे सोचें चाहे जो बात,
हम भूखों को सिर्फ चाहिए एक वसन, दो भात,
भूख लगी है रोटी दो।"[21]

शिशुओं की चिंता करते हुए जनकवि:-

आज हमारे समाज में स्त्रियों की विवशता और बच्चों की भूख- ये दो चीज़ें ऐसी हैं जो दिनकर के भावुक हृदय को क्रांति के लिए सबसे अधिक प्रेरित करती हैं। 'हाहाकार' में बच्चों की भूख और दूध के लिए उनकी चिल्लाहट का ऐसा वर्णन किया है, जो पत्थर के दिल को भी पिघला सकता है-

"पर, शिशु का क्या हाल, सीख पाया न अभी जो आंसू पीना ?
चूस-चूस सुखा स्तन मां का सो जाता रो-बिलप नगीना।
विवश देखती मां, अंचल से नन्हीं जान तड़प उड़ जाती;
अपना रक्त पिला देती यदि फटती आज व्रज की छाती।"[22]

युगों के मूक-मौनों की वाणी के रूप में दिनकर:-

रामधारी सिंह दिनकर मानवता के पक्षधर, राष्ट्र-निर्माता और हिंदी साहित्य के छायावादोत्तर काल के प्रखर और ओजस्वी कवि हैं। इनका साहित्य संसार बड़ा अविस्मरणीय है। उनकी काव्यात्मक प्रतिभा ने उन्हें लोकप्रिय, अविस्मरणीय, और राष्ट्रकवि बना दिया है। राष्ट्रीयता का स्वर, सांस्कृतिक संदेश, मनुष्यता के साथ साथ इनके काव्य में से जो हुंकार, गर्जन, ज्वाला और तेज है, वह उस समय की तात्कालीन राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों की देन है। राष्ट्र के प्रति अगाध प्रेम, लगाव तथा अपने रचनात्मक कार्यों के कारण ही उनका यशोगान राष्ट्रीय - सांस्कृतिक चेतना के कवि के रूप में किया जाता है। राष्ट्र के निर्माण में प्रत्येक व्यक्ति का योगदान होता है। अतः अमीर हो, गरीब हो, सर्वहारा हो या दलित हो कवि की दृष्टि में सभी की एक ही पहचान है मनुष्यता। लोक धर्म से बढ़कर, मानव कल्याण से श्रेष्ठ और कोई धर्म नहीं।.... आजादी के बाद समकालीन जड़ताओं, अंधविश्वासों, रूढ़ियों, कर्मकांडों, राजनीतिक वैमनस्य, धर्मांधता और जातिवाद के ज्वलंत मुद्दों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। स्वतंत्र भारत में मानवीय गुणों को, प्रतिभा को, क्षमता को रक्त और जाति विशेष से संबंध करके देखा जाता है। दिनकर की आत्मा इसी से पीड़ित है, व्यथित व क्षुब्ध भी है।"[23]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि दिनकर जी में संवेदना और विचार का बड़ा सुन्दर समन्वय दिखाई पड़ता है। चाहे व्यक्तिगत प्रेम सौंदर्यमूलक कविताएं हों, चाहे राष्ट्रीय कविताएं, सभी कवि की संवेदना से स्पंदित हैं। दिनकर में आरंभ से ही अपने को अपने परिवेश से जोड़ने की तड़प दिखायी पड़ती है, इसीलिए उनमें सर्वत्र एक खुलापन है, लोकोन्मुखता है, सहजता है- व्यक्तिगत प्रेम सौंदर्यमूलक कविताओं में भी। छायावाद या उत्तर छायावादी वैयक्तिक कविता की कुंठा, अतिरिक्त अवसाद तथा निराशा के घिराव के स्थान पर प्रसन्नता और सर्वत्र सौंदर्य के प्रति स्वस्थ मानवीय प्रतिक्रिया दिखाई पड़ती है। दिनकर की सबसे बड़ी विशेषता है अपने देश और युग-सत्य के प्रति जागरुकता। कवि देश और काल के सत्य को अनुभूति और चिंतन दोनों स्तरों पर ग्रहण करने में समर्थ हुआ है। कवि ने राष्ट्र को उसकी तात्कालिक घटनाओं, यातनाओं, विषमताओं, समस्याओं आदि के ही रूप में नहीं, बल्कि उसकी संश्लिष्ट सांस्कृतिक परम्परा के रूप में भी पहचाना है और उसके प्राचीन मूल्यों का नये जीवन संदर्भों में आकलन कर एक ओर उन्हें जीवंतता प्रदान की है, वहीं वर्तमान की समस्याओं और आकांक्षाओं को महत्त्व देते हुए, उन्हें अपने प्राचीन किंतु जीवंत मूल्यों से जोड़ना चाहा है। दिनकर ने राष्ट्रीयता को मात्र भावनात्मक प्रतिक्रिया से उबार कर चिंतन, परीक्षण तथा आत्मालोचन का स्वस्थ रूप देने का प्रयत्न किया, साथ ही इस राष्ट्रीयता को सार्वभौमिक मानवता के रूप में विकसित होने का स्वप्न देखा। यह विकास तभी संभव है, जब बुद्धि के ऊपर संवेदनशील हृदय का शासन हो। 'कुरुक्षेत्र' में में भीष्म के माध्यम से बुद्धि से वस्तुस्थिति की इन पंक्तियों में तीखी पहचान और हृदय में सार्वभौम सुख-साम्राज्य की स्थापना की कामना का सुंदर समन्वय हुआ है:

"कर पाता यदि मुक्त हृदय को, मस्तक के शासन से,
उतर पकड़ता बांह दलित की, मंत्री के आशन से,
स्यात् सुयोधन भीत न उठाता पग कुछ और सम्भल के,
भरत भूमि पड़ती न स्यात् संगर में आगे चल के।"[24]

<u>संदर्भ ग्रंथ :-</u>

1. नंदकिशोर नवल व तरुण कुमार (संपादक), दिनकर रचनावली, खंड 1, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्मरण -2021, पृष्ठ संख्या- 20.
2. कथन- रामबृक्ष बेनीपुरी, भूमिका-हुंकार, पृष्ठ संख्या-6.
3. नंदकिशोर नवल व तरुण कुमार (संपादक), दिनकर रचना- वली, खंड 3, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्मरण-2021, पृष्ठ संख्या-26.
4. नंदकिशोर नवल व तरुण कुमार (संपादक) , दिनकर रचनावली, खंड 5, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्मरण-20 21, पृष्ठ संख्या-131.
5. नंदकिशोर नवल, तरुण कुमार (संपादक), दिनकर रचनावली, खंड 2, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्मरण-2021, पृष्ठ संख्या-132.
6. नंदकिशोर नवल व तरुण कुमार (संपादक), दिनकर रचनावली, खंड 1, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्मरण-2021, पृष्ठ संख्या-212.
7. चिंतन के आयाम- दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-57.
8. चिंतन के आयाम- दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-95.
9. नंदकिशोर नवल व तरुण कुमार (संपादक), दिनकर रचनावली, खंड 1, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्मरण-20 21, पृष्ठ संख्या-315.

10. संपादक, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल, हिंदी सा. इतिहास, पृष्ठ संख्या-623-624.
11. नंदकिशोर नवल व तरुण कुमार (संपादक), दिनकर रचनावली, खंड 5, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्मरण-20 21, पृष्ठ संख्या-348-349.
12. नंदकिशोर नवल व तरुण कुमार (संपादक), दिनकर रचनावली, खंड 5, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्मरण-2021, पृष्ठ संख्या- 385.
13. नंदकिशोर नवल व तरुण कुमार (संपादक), दिनकर रचनावली, खंड 5, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्मरण-20 21, पृष्ठ संख्या- 352.
14. नंदकिशोर नवल व तरुण कुमार (संपादक), दिनकर रचनावली, खंड 5, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्मरण -2021, पृष्ठ संख्या- 331.
15. नंदकिशोर नवल व तरुण कुमार (संपादक), दिनकर रचनावली, खंड 5, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्मरण-2021, पृष्ठ संख्या-357.
16. नंदकिशोर नवल व तरुण कुमार (संपादक), दिनकर रचनावली, खंड 5, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्मरण-2021, पृष्ठ संख्या-335.
17. नंदकिशोर नवल व तरुण कुमार (संपादक), दिनकर रचनावली, खंड 5, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्मरण-20 21, पृष्ठ संख्या-387.
18. नंदकिशोर नवल व तरुण कुमार (संपादक), दिनकर रचनावली, खंड 5, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्मरण-2021, पृष्ठ संख्या-422.
19. चिंतन के आयाम- दिनकर, लोकभारती प्रकाशन पृष्ठ संख्या-113
20. नंदकिशोर नवल व तरुण कुमार (संपादक), दिनकर रचनावली, खंड 1, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्मरण-2021, पृष्ठ संख्या-103.
21. नंदकिशोर नवल व तरुण कुमार (संपादक), दिनकर रचनावली, खंड 1, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्मरण-2021, पृष्ठ संख्या-305.
22. नंदकिशोर नवल व तरुण कुमार (संपादक), दिनकर रचनावली, खंड 1, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्मरण-2021, पृष्ठ संख्या-109.
23. विश्वभारती पत्रिका- मुक्तेश्वर नाथ तिवारी (संपादक), अंक 1, खंड-88.
24. संपादक, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल, हिंदी सा. इतिहास, पृष्ठ संख्या-604-605.

•